निर्झर

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra
KOBA. (Dist. Gandhinagar) Pin 382009.
Phone: 21342/21345. Gram: 02712.

पंचदश वर्ष : जून १९९१ : द्वितीय अंक

जैन भवन

आ श्री कैलाससागरसूरि ज्ञानमंदिर
श्री महावीर जैन आराधना केन्द्र, कोबा,
जि गांधीनगर

तित्थयर

भ्रमण संस्कृति मूलक मासिक पत्र

वर्ष १५ : अंक २

जून १९९१

□

संपादन

गणेश ललवानी

राजकुमारी बेगानी

□

आजीवन : एक सो एक

वार्षिक शुल्क : दस रुपये

प्रस्तुत अंक : एक रुपया

□

प्रकाशक

जैन भवन

पी-२५ कलाकार स्ट्रीट

कलकत्ता-७०००७

□

मुद्रक

सुराना प्रिन्टिंग वर्क्स

२०५ रवीन्द्र सरणी

कलकत्ता-७

सूची

वैभारगिरि की ऐतिहासिक मुनिसुव्रत जिन-प्रतिमा ३५

जैन परम्परा में योग ३८

त्रिषष्टि शलाका पुरुष

चरित्र ५१

संकलन ६१

जैन पत्र-पत्रिकाएँ : कहाँ/क्या ६३

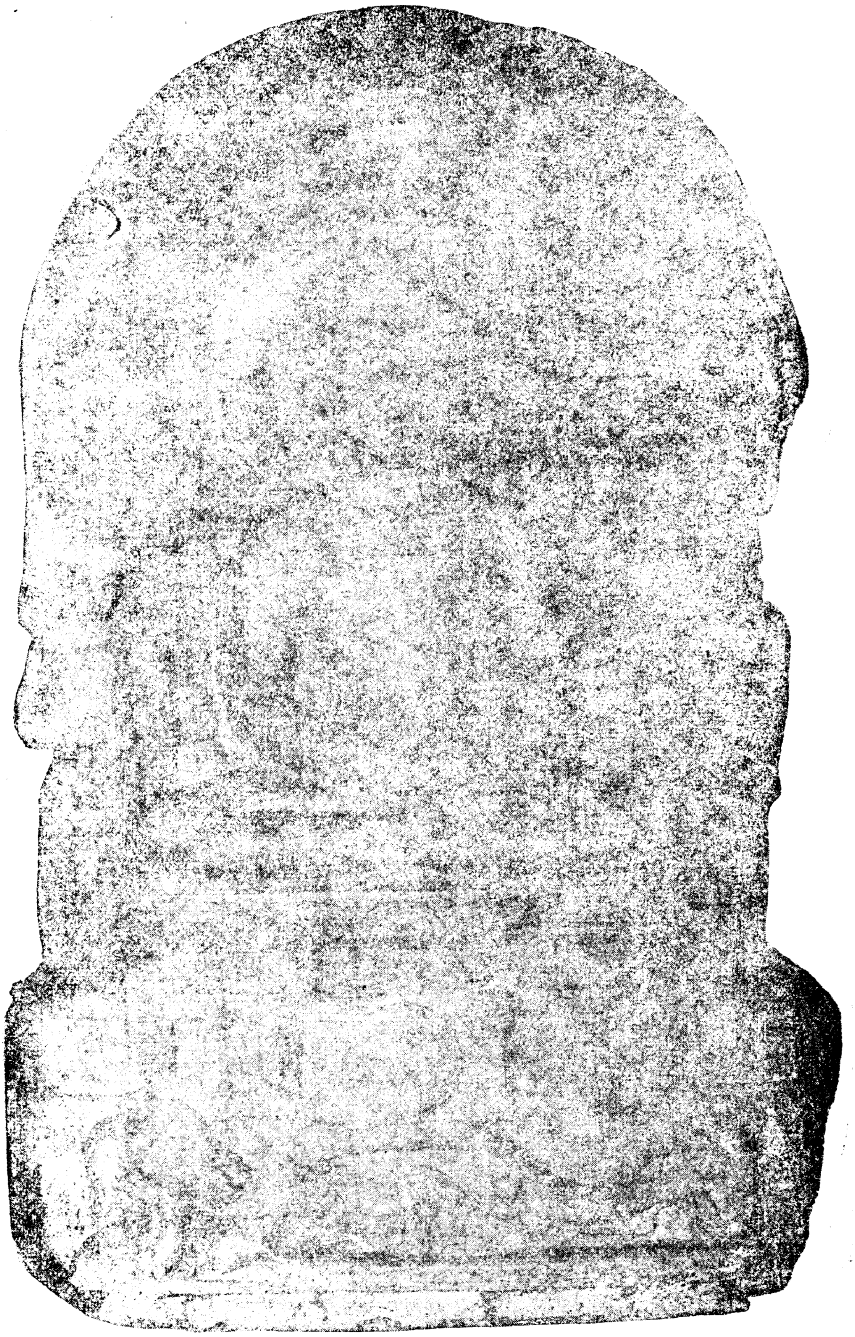

तीर्थंकर मुनिसुव्रत स्वामी, वैभारगिरि, राजगृह

वैभारगिरि की ऐतिहासिक मुनिसुव्रत जिन-प्रतिमा

डॉ० महेन्द्रकुमार जैन 'मनुज'

प्राचीन मगध की राजधानी राजगृह के वैभारगिरि पर्वत पर उत्खनन में एक प्राचीन जैन मन्दिर प्राप्त हुआ है। गर्भगृह के अतिरिक्त मन्दिर की परिक्रमा में चारों ओर कुल २२ देव कुलिकाएँ और मन्दिर के बाहर एक तलगृह है।

पूर्वाभिमुख गर्भगृह में मूलनायक के रूप में मुनिसुव्रत जिन प्रतिमा अवस्थित है। २७×४७ इंच के शिलाखण्ड में शिल्पित यह सपरिकर प्रतिमा अत्यन्त महत्व की है।

यह मूर्ति ध्यानमुद्रा में कलात्मक दोहरे कमल पर आसीन उत्कीर्णित है। १७×२१ इंच की इस मूर्ति के दोनों बाजुओं में दो चँवरधारी मुकुट, कुण्डल, हार, भुजबंद, कड़ा और कटिबन्ध आदि अलंकरणों से अलंकृत अंकित हैं। प्रतिमा के केश घुंघराले सोष्णीष अंकित हैं। कर्ण सामान्य से कुछ लम्बे किन्तु स्कन्धों से नहीं छू रहे हैं। ग्रीवा-त्रिबली स्पष्ट अंकित है। ऊपर छत्रत्रय का अंकन, छत्रत्रय के एक ओर झाल लिए दो हाथ और दूसरी ओर ढोलक पीटते हुए दुन्दुभिवादकों के दो हाथ उत्कीर्णित हैं। दुन्दुभि वाद्यों के नीचे गगन में उड़ते हुए माल्य व पुष्पवर्षक देव दर्शाए गए हैं। प्रतिमा का प्रभावलय अत्यन्त कलात्मक है, उसके ऊपर दोनों ओर दो-दो अशोकपत्र-गुच्छ उकरित हैं।

तीर्थंकर के आसन में कमल के नीचे बीच में धर्मचक्र और उसके दोनों ओर विपरीताभिमुख दो सिंह शिल्पित हैं। धर्मचक्र में १२ आरे दर्शाये गये हैं।

लाञ्छन : सिंहासन के सिंह-द्वय अंकन को देखकर इस प्रतिमा को तीर्थंकर महावीर की प्रतिमा अनुमानित किया गया है;[१] किन्तु इस प्रतिमा के पेडिस्टल में धर्मचक्र के पास ही एक बहुत छोटा (लगभग १×१½ इंच का) कूर्म उत्कीर्णित है। जिससे निश्चित होता है कि यह मुनिसुव्रत जिन की प्रतिमा है।

---

१ राजगृह—भँवरलाल नाहटा, पृष्ठ ६५, श्री जैन सभा, कलकत्ता, विक्रम सं. २००५

राजगृह की प्राचीन जैन मूर्तिकला में यदि महावीर के सिंहासन के सिंह भी दर्शाए गए हैं तो लाञ्छन का सिंह अलग से बीच में दर्शाया गया है। अन्य तीर्थंकरों का लाञ्छन भी यदि एक दर्शाया गया है तो वह बीच में, और दो हैं तो दोनों ओर अनुकूलाभिमुख अंकित किए गए हैं; जबकि सिंहासन के सिंहों का सभी जगह प्रतिकूलाभिमुख अंकन हुआ है।

नारी प्रतिमा : सिंहासन के नीचे एक नारी प्रतिमाङ्कन है। दाहिने करवट लेटी हुई यह द्विभुजा नारी अत्यन्त कुशलता से शिल्पित है। इस नारी को उसके दाहिने हाथ से सिर को सहारा दिए हुए, सिर एवं पैरों के नीचे एक-एक मसनंद लगाए हुए दिखाया गया है। इसकी केश-सज्जा में शिल्पी ने अपनी अच्छी कुशलता प्रदर्शित की है। कर्णावतंस, मुक्ताहार, कटिमेखला, बाजूबंद, कंगन और अधोवस्त्रादि अंकन के अतिरिक्त इसकी शय्या तथा मसनंद भी अलंकृत दर्शायी गयी है। नारी के पैरों की ओर एक परिचारिका उकरित है।

इस नारी मूर्ति को कुछ अन्वेषकों ने तीर्थंकर महावीर की माता त्रिशला माना है;[२] किन्तु तीर्थंकर प्रतिमा के पादपीठ पर कूर्म लाञ्छन पाये जाने से जिन प्रतिमा तीर्थंकर मुनिसुव्रत की स्पष्ट हो जाने के कारण अब यही कहा जा सकता है कि या तो यह नारी मूर्ति मुनिसुव्रत जिन की यक्षी बहुरूपिणी[३] का अंकन है या उनकी माता सोमा[४] का।

बारहभुजी गुफा, बजरामठ (ग्यारसपुर) और आशुतोष संग्रहालय कलकत्ता की मूर्तियों से तुलना कर इसे बहुरूपिणी यक्षी अनुमानित किया गया है।[५] डॉ० मारुतिनन्दनप्रसाद तिवारी का भी अभिमत है कि "स्त्री के

---

२ भगवान महावीर (एलबम)—गणेश ललवानी, चित्र सं. २३, जैन भवन, कलकत्ता, १९७४

३ प्रतिष्ठासार संग्रह के अनुसार मुनिसुव्रत की यक्षी बहुरूपिणी है। —जैन प्रतिमाविज्ञान, बालचन्द्र जैन, पृ. ८४, जबलपुर, १९७४

४ तीर्थंकर मुनिसुव्रत की माता का नाम महापुराण के अनुसार सोमा तथा तिलोयपण्णत्ती, पद्मपुराण एवं हरिवंशपुराण के अनुसार पद्मावती है। —जैनेन्द्र सिद्धान्तकोष, जिनेन्द्रवर्णी, भाग-२, पृष्ठ ३७९, भारतीय ज्ञानपीठ, १९७१

५ जैन प्रतिमा विज्ञान—डॉ. मारुतिनन्दन प्र० तिवारी, पृ. २१६, पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, वाराणसी, १९८१

समीप कोई बालक-आकृति नहीं उत्कीर्ण है, अतः इसे जिन की माता नहीं माना जा सकता है। फिर माता का जिन मूर्तियों के पादपीठों पर जिनों के चरणों के नीचे अंकन भारतीय परम्परा के विरुद्ध भी है।"[६] किन्तु इस सन्दर्भ में देवगढ़ के मन्दिर नं. ४ (ईसा १०वीं शती) का वह शिल्पांकन[७] दृष्टव्य है जिसमें तीर्थंकर की माता को वैभारगिरि की प्रतिमा के लगभग समान मुद्रा एवं अलंकरणयुक्त दर्शाया गया है और जिसके ऊपर तथा सिरहाने तीर्थंकर अंकित हैं तथा समीप कोई बालक-आकृति भी उत्कीर्ण नहीं है।

वैभारगिरि की स्त्री-प्रतिमा के जिन-माता होने के पक्ष में राजगीर का ही एक अत्यन्त महत्वपूर्ण शिल्पांकन[८] जाता है, जिसमें २३ तीर्थंकरों के नीचे दो परिचारिकाओं से सुश्रूषित लेटी हुई जिनमाता अंकित है तथा उसी के समानान्तर ललितासन में आम्रगुच्छ और दो बालकों के साथ अम्बिका उत्कीर्ण है। तीर्थंकर मुनिसुव्रत का जन्म राजगृह में होने[९] का सन्दर्भ भी नारी प्रतिमा का अंकन माता सोमा का होने की ओर इंगित करता है। दूसरी ओर अन्य सन्दर्भों में किसी यक्षी का लेटा हुआ नहीं पाया जाना, प्रकृत शिल्पांकन में बहुरूपिणी की चार भुजाओं,[१०] आयुधों[११] (फल, खेटक और खड्ग आदि) तथा सर्पासन[१२] में से किसी भी लक्षण का नहीं पाया जाना बहुरूपिणी यक्षी की सम्भावना को नकारते हैं।

इस प्रकार यह सम्पूर्ण शिल्पाङ्कन कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। इस शिल्पकला का समय ९वीं-१०वीं शती ई० अनुमानित किया जाता है।

---

६ वही, पृ. २१६ का पादटिप्पण, संख्या-३

७ देवगढ़ की जैनकला, डॉ० भागचन्द्र जैन भागेन्दु, चित्र सं. ९३

८ राजगीर के दिगम्बर जैन लालमन्दिर की प्राचीन पार्श्वनाथ की वेदी में यह प्रतिमा स्थापित है। —लेखक

९ महापुराण, ६७/२०, भारतीय ज्ञानपीठ, १९५१

१०-१२ प्रतिष्ठासारसंग्रह, ५/६१

जैन परम्परा में योग

मुनि सुशीलकुमार

आध्यात्मिक जैन परम्परा ने जीवन के चरम विकास के लिए जितने भी साधन वर्णित किये हैं उनमें योग को सर्वोपरि माना है। अध्यात्मविद्या का सार योग है। वैदिक, जैन, बौद्ध, ईसाई, इस्लाम आदि सभी धर्मधाराओं का महासमन्वय भी आध्यात्मिक धरातल पर योगविद्या में ही हो जाता है। जैन धर्म भी योग पर ही सर्वाधिक बल देता है अथवा ऐसा भी कह सकते हैं कि जैन धर्म योग है और योग जैन धर्म है। क्योंकि अहिंसा और अनेकान्त दो ही जैन धर्म के आधार हैं, तथा अष्टांग के बिना न अहिंसा की सार्वभौम प्रतिष्ठा हो सकती हैं और न ज्ञानयोग के बिना अनेकान्त का स्वस्थ दर्शन।

संसार में योगमार्ग का शुद्धरूप से जितना प्रसार होगा वह सब जैन धर्म का ही प्रचार होगा। जैन धर्म किसी कर्मकाण्ड का नाम नहीं है और न ही किसी पोथी पूजा को जैन धर्म कहते हैं। जैन धर्म तो आत्मधर्म है। आत्मा ही तीर्थ है और आत्माभिमुख या अंतर्मुख होना ही तीर्थयात्रा है। ज्ञान जल से मल विक्षेपों को दूर करना ही तीर्थस्नान है। योगमार्गियों को वैर-त्याग, अभक्ष्य-त्याग एवं चित्त की चंचलता का त्याग करना आवश्यक है। यही जैन धर्म है।

प्रज्ञा प्रकर्ष और सर्वांगीण आभ्यन्तर विकास के लिए योगमार्ग के सिवाय दूसरा कोई रास्ता नहीं है। जैन धर्म में भगवान ऋषभदेव से लेकर भगवान महावीर तक २४ तीर्थंकरों का वर्णन हैं। वे सभी परमयोगी और अष्टांग योगमार्ग के प्रवक्ता तथा प्रवर्तक थे। भगवान महावीर के संदेश को योगप्रदीपकार ने इस प्रकार व्यक्त किया है :

"योगी जन कायदुर्ग में, अज्ञान से आच्छादित आत्मा को सामायिक दीप के सहारे उपलब्ध करते हैं। इस अन्तरज्योति को प्राप्त करने का योग के सिवाय दूसरा कोई मार्ग नहीं है।

"तीर्थ-तीर्थ पर घूमकर जिस परमतत्व के दर्शन की उत्कट साध लिए तुम इधर-उधर घूम रहे हो, वह तो तुम्हारी देह में ही विराजमान है, किन्तु उसे योगविद्या के अवलम्ब बिना देख नहीं सकते।

"अनन्त सूर्यों जैसी प्रभाराशि, अनंत सौंदर्य प्रतीक, अनन्त विश्व चेतना के उपकारक, अनन्त आनन्द निमग्न परमात्मकला से उक्त आत्मतत्व का

दर्शन केवल योग द्वारा ही सम्भव है। विश्वास करो कि आत्मा के ज्ञान बिना घोर तप, दुष्कर व्रत पालन और कठोर चर्या का अनुसरण करना व्यर्थ है। वह केवल मूढ़ क्रिया है। अतः हे साधक! अगर जीवन विकास एवं अध्यात्मिक उत्कर्ष की जिज्ञासा हैं, तो ध्यानयोग का अनुसरण कर और देह में रहते हुए देहमुक्त होने का अभ्यास कर, कायोत्सर्ग का मार्ग ही आत्मस्वरूप निरंजन परमात्मा के परम पद पर आरूढ़ कर देता है।"

योग के अनेक मार्ग हैं जिनमें भक्तियोग, क्रियायोग, ज्ञानयोग एवं साम्ययोग ही मुख्य हैं। ज्ञान, दर्शन एवं चारित्र त्रयरूप साधना ही योग है।

साधना क्रम में भक्तियोग से क्रिया योग, क्रिया योग से ज्ञानयोग और ज्ञानयोग द्वारा साम्ययोग की प्राप्ति होती है।

सामान्य साधना भक्ति से प्रारम्भ होती है। भक्ति के भी अनेक प्रकार हैं। फिर भी मुख्यरूप में नवधा भक्ति का योगदीपिकाकार ने ५६ वें श्लोक में वर्णन किया है। जैसे :

श्रवण क्रिया भक्ति	:	श्रुतश्रवण अन्तरंग वृत्ति
कीर्तन क्रिया भक्ति	:	आत्मकीर्त्तन, आत्मघोष (जैसे सोऽहं) आत्मा
सेवन क्रिया भक्ति	:	भेदज्ञान से आत्मज्ञान-परिणति
वचन क्रिया भक्ति	:	शुद्ध चैतन्य भाव का वारम्बार वन्दन
ध्यान क्रिया भक्ति	:	धर्मध्यान-शुद्धध्यान की ओर परिणति
लघुता क्रिया भक्ति	:	अहंतानाश, नम्रता की प्राप्ति
एकता क्रिया भक्ति	:	एकत्वभावना
समता क्रिया भक्ति	:	सभी में समत्व दर्शन का अभ्यास

जब साधक भक्ति द्वारा अन्तःकरण निर्मल कर लेता है, तो क्रिया और ज्ञान द्वारा अष्टांग-मार्ग पर चढ़ने योग्य हो जाता है। ज्ञानपूर्वक भक्ति का प्रतिपादन इसलिए किया जाता है कि भक्त सर्वप्रथम् स्वामी-सेवक भाव भक्ति में रहता है। वह अपने स्वामी को परमाराध्य की तरह मानता है और अनेक प्रकार से आत्मज्ञान प्राप्ति के लिए स्वामी का अनुग्रह चाहता है। भक्तिमार्गी स्वामी-सेवक भाव में जब हिलोरें लेता है तो उस प्रेम अवस्था का भी योग-दीपिकाकार ने अलौकिक रूप से वर्णन किया है और उसकी भी चिंतन भेद से ६४ अवस्थाएँ बताई हैं।

भक्त प्रभु के अनन्त रूपों को स्मरण करता हुआ, प्रेम-विह्वल होकर

प्रार्थना स्वरूप में प्रभु से किस प्रकार की उपलब्धि चाहता है महाप्रभु परमात्मा के अलौकिक स्वरूपों को निहारता हुआ तद्गुणलब्धि के लिए विकल हो जाता है उसका वर्णन इस प्रकार है :

"परमात्मा के अलौकिक शान्तस्वरूप, अनन्त ज्ञानरूप, अनुपम क्षायिक आनन्द निमग्न, समरस व सहजस्वरूप का दर्शन व अनुभूति कर साधक प्रभुमय होकर गुण चिंतन करता हुआ अपनी सुध बुध भूल जाता है और परमात्म-स्वरूप हो जाने के लिए विकल हो जाता है" आदि-आदि।

वास्तव में यह गुणचिंतन की साधना ही साधक को प्रभु के साथ तदाकार बनाती है और आत्मा के निजगुणों को चरम उत्कर्ष तक प्रकट करने में सहायक होती है। योग मार्ग का प्रारम्भ ऐसे ही आत्मविश्वासी, प्रभुसमर्पित, वीतराग उपासक तथा विषयविरक्त आत्म-जिज्ञासुओं के लिए हुआ है। अनुभूति की परिपक्व दशा में स्वामी-सेवक भाव अद्वैत आत्म रूप भाव में परिणत हो जाता है।

योग मार्ग को जानने की इच्छा रखने वाला मुमुक्षु, वीतराग देव पर पूर्ण आस्था रख कर, अन्तर्द्रष्टा, तत्ववेत्ता, अनन्तज्ञानी, अरिहंत देव द्वारा प्ररूपित मार्ग पर चलने की पूर्ण अभिलाषा के साथ अध्यात्म संकल्प करे। *फिर योग के विविध अंगों के पालन की सामर्थ्य अनुसार* प्रतिज्ञा कर योग मार्ग का अनुष्ठान करे। धर्म-संन्यास और योग-संन्यास में से किसी एक मार्ग का चयन करना आवश्यक है। श्रद्धावान, ज्ञानी, अद्रोही और प्रपंचशून्य साधक धर्म संन्यास की ओर उन्मुख हो। जीवन के आध्यात्मिक विकास का आकांक्षी योग-संन्यास को ग्रहण करे। योग-संन्यासी को दृढ़-योग का तो अवलम्बन करना ही पड़ता है। वैसे भी भगवान ऋषभदेव से लेकर भगवान महावीर तक सभी तीर्थंकरों ने मन, वचन तथा काया को अकुशलवृत्ति से रोकने एवं सावद्य-योग से निवृत्त होने तथा आश्रवनिरोध हेतु तत्पर होने के लिए सबसे अधिक बल दिया है।

यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान समाधि।

यम : योग शासन में, योग के आठों अंगों में सर्वप्रथम यमों का ही वर्णन है, जिन्हें साधक महाव्रतों के रूप में सार्वभौम रूप से स्वीकार करता है।

मोहनीय के क्षयोपसम को धर्म-संन्यास तथा काया के कायोत्सर्ग को योग-संन्यास कहते हैं। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह ये पाँच यम हैं। मुमुक्षु साधक मन, वचन, काया से सभी प्रकार की हिंसा, असत्य,

चोरी, व्यभिचार और परिग्रह का त्याग कर सार्वभौम रूप से महाव्रतों को धारण करे। चारित्र के बिना कोई भी साधक अन्तर्ज्ञान की ओर नहीं जा सकता। द्रव्य-चारित्र और भाव-चारित्र दोनों का ही साधक को अहर्निश पालन करना चाहिये। मन को पूर्ण पवित्र, ध्येयनिष्ठ और रागद्वेष रहित रखना चाहिये।

नियम : चरित्र में उत्कृष्टता एवं शुद्धि लाने के लिए इच्छाओं पर अंकुश रखना चाहिये। इसके लिए शास्त्रकारों ने तप, शौच, संतोष, स्वाध्याय एवं संयम व विवेक का विधान किया है। नियम के स्थान पर १२ योग संग्रहों का भी वर्णन आता है जिनमें गत पापों की आलोचना, धर्मदृढ़ता, अपेक्षारहिततपाराधन, लोभपरित्याग, तितिक्षा, सरलता, शुचिभाव, विनय-शील, आचारवान, धृतिवान, मेधावी, अप्रमादी ध्येयनिष्ठ, संगविवर्जन, प्रायश्चित करने वाला एवं आराधक होना, आदि सद्गुणों का प्रतिपादन किया गया है। योगी के लिए शुद्ध एकान्त स्थान में रहने का निर्देश दिया गया है।

आसन : योगी के लिए आसन दृढ़ता की बड़ी आवश्यकता है। वैसे तो कहीं-कहीं चौरासी लाख आसनों का भी उल्लेख आता है, किन्तु मुख्यतया चौरासी आसन ही प्रसिद्ध हैं उनमें भी १३ आसन अधिक महत्वपूर्ण हैं जैसे कि—स्वस्तिकासन, गोधुकासन, गोमुखासन, वीरासन, कूर्मासन, कुक्कुटासन, धनुषासन, पश्चिमोत्तानासन, मयूरासन, सिंहासन, शवासन, सिद्धा-सन, पद्मासन।

प्राणायाम : जैन शास्त्रों में प्राणायाम के अन्तर्गत स्वरोदय के विस्तृत वर्णन के साथ-साथ आचार्य भद्रबाहु के अनुरूप महाप्राणायाम व कुंभक-प्राणायाम का सुन्दर वर्णन मिलता है। कूंभकप्राणायाम के अनेक भेद-प्रभेदों का विस्तारपूर्वक वर्णन आचार्य हेमचन्द्र ने किया है। उसमें मुख्यतः १७ प्रकार के कुंभकों का संक्षिप्त विवरण यहाँ प्रस्तुत है।

(१) सूर्यभेदन कुंभक : दक्षिण नासिका से वायु पूरक करना और वाम नासिका से प्रश्वास छोड़ना यह सूर्यभेदन कुंभक है। कुंभक का अनुष्ठान वज्रासन या स्वस्तिकासन से करना चाहिये।

फल : मस्तक रोग, कृमिरोग एवं वायु रोगों का नाश।

(२) उज्जायी कुंभक : सिद्धासन करके, मुख बन्द कर, साधारण शब्द

बोलते हुए वायु जिस प्रकार कंठ से हृदय तक जाता है, उसी प्रकार दोनों नासिकाओं से पूरक करके, यथाशक्ति कुंभक करना व इड़ा से रेचक करना।

इस प्राणायाम को बैठते-उठते भी कर सकते हैं।

फल : कफ, वायु रोग, हृदय रोग, धातु विकारों का निवारण।

(३) सीत्कारी कुंभक : दोनों अधरों में जिह्वा को अर्धगोलाकार करके सीत्कार पूरक करके मुख बन्द कर, यथाशक्ति कुंभक करे व दोनों नासिका छिद्रों से वायु रेचन करे यह सीत्कारी कुंभक प्राणायाम है।

फल : रूप, सौंदर्य-वृद्धि, योगसिद्धि, भूख, तृष्णा, निद्रा, आलस्य व रोगों का निवारण तथा बलवर्द्धन।

(४) शीतली कुंभक : काक चंचु की तरह मुख से जिह्वा को बाहर निकाल कर पूरक करे और नख से सिख तक कुंभक करे, पीछे शान्ति से दोनों नासिकाओं से रेचन करे यह शीतली कुंभक है।

फल : गुल्म, प्लीहा, ज्वर, पित्तविकार एवं विषविकारों का निरोध।

(५) भ्रामरी कुंभक : वाम नासिका से भ्रमरगुंजन की तरह ध्वनि पूर्वक पूरक करके, यथाशक्ति कुंभक करे। भ्रमर गुंजन की तरह ध्वनि पूर्वक ही दक्षिण नासिका से रेचन करे।

फल : चित्त स्थिरता व आनन्दोपलब्धि।

(६) भास्त्रिक कुंभक : पद्मासन या वीरासन से बैठकर, ग्रीवा और पेट को सीधा रखके, मुख-बंध करके लोहार की धमनी की तरह वायु को चलायमान करे। कण्ठ, उदर और कपाल पर्यन्त वाम नासिका से पूरक करे, दक्षिण नासिका से तुरन्त रेचन करे। पुनः तुरन्त वाम नासिका से पूरक करे। जब थक जाये तो अंत में दक्षिण नासिका से पूरक के उपरांत कुंभक कर वामछिद्र रेचक करे। यह उत्तम भास्त्रिक कुँभक है।

फल : त्रिदोष नाश और सुषुम्ना भेदन।

(७) *मूर्च्छा कुंभक : दक्षिणनासिका से पूरक कर, जालंधर बन्ध को* कण्ठ में स्थापन कर कुंभक करना और धीरे-धीरे दोनों छिद्रों से रेचन करना मूर्च्छा कुंभक है।

फल : षण्मुखी मुद्रा भी इसी कुंभक में सम्पन्न होती है।

(८) प्लाविनी कुंभक : पद्मासन लगाकर, छाती को बाहर निकालकर, माथा ऊपर उठा, दोनों भुजा लम्बी कर, दोनों हाथों के अंगुठों को एक-

दूसरे से अच्छी तरह पकड़कर पूरक के द्वारा उदर कोष्ठक को पूर्ण भर ले यह प्लाविनी कुंभक है।

फल : अगाध जल में तैर सकता है, और सुखपूर्वक आनन्द लेता है।

(९) मलशोधक प्राणायाम : वाम नासिका से पूरक कर (प्राणवायु को) उदर में भरे, यथाशक्ति कुंभक कर दक्षिण छिद्र से धीरे-धीरे रेचन करे, फिर दक्षिण से पूरक कर वाम से रेचन करे यह मलशोधक कुंभक हुआ। वायु रेचन मन्द गति से किया जाना चाहिये। शीघ्रता करने में बल-क्षय होने की आशंका है।

फल : मल शुद्धि।

(१०) केवल कुंभक : शरीर में स्थित वायु आकाश की तरह स्थिर रहे, मुख और नासिका के दोनों छिद्रों को खुला रखा जाये, तथा श्वास-प्रश्वास की गति बिल्कुल न हो उसे केवल कुंभक कहते हैं।

(११) सहित कुंभक : पूर्ण श्वास लेकर, नासिका और मुख-बंध लगाकर, श्वास को फेफड़ों और उदर कोष्ठक में रोक रखे, प्रश्वास द्वारा रेचन करे। पुनः पुनः मुख को बंध कर वायु बाहर रखे। इसके भी दो प्रकार हैं : सहित कुंभक प्राणायाम के प्रथम प्रकार को पूरक-सहित कुंभक और दूसरे को रेचक-सहित कुंभक कहते हैं

(१२) नित्य प्राणायाम : वाम नासिका से वायु पूरक करना और उदर और फेफड़ों में कुंभक कर दक्षिण नासिका से रेचक करना अर्थात् चार पल, सोलह पल व आठ पल और उत्तरोत्तर बढ़ने पर २०-८०-४० तथा ५०-१२०-१०० तक अभ्यास बढ़ा लेना चाहिये। १०-१२-१२ इन तीनों से नाड़ियों की शुद्धि होती है और इसी से परकाय प्रवेश का सामर्थ्य प्राप्त होता है। इसी प्रकार रेचक प्राणायाम के भी कई प्रकार हैं।

(१३) रेचक प्राणायाम : उदर से प्रयासपूर्वक वायु को नासिका से बाहर निकालने को रेचक प्राणायाम कहते हैं। बाहर से नासिका द्वारा श्वास लेकर गुदाद्वार पर्यन्त पूरक करना एवं प्राणवायु को नाभिकमल में स्थिर करना, इसे भी रेचक प्राणायाम कहते हैं।

(१४) प्रत्याहार प्राणायाम : देह के भिन्न-भिन्न स्थानों जैसे मुख, नासिका, तालु, गुदा, आँख, कान आदि अलग-अलग स्थानों से दूसरे स्थान में वायु को ले जाना प्रत्याहार प्राणायाम है।

(१५) शान्त प्राणायाम : तालु, नासिका तथा मुखद्वार से वायु का निरोध करने को शान्त प्राणायाम कहते हैं। शान्त प्राणायाम में और कुंभक प्राणायाम में केवल अन्तर इतना ही है कि कुंभक में वायु को नाभिकमल में रोकना होता है, किन्तु शान्त में ऐसा नहीं होता है। वायु रेचन करने के स्थानों में निरोध करने का भी विधान हैं।

(१६) उत्तर व अधर प्राणायाम : श्वास लेने के उपरान्त प्राण वायु को हृदयादि स्थानों में धारण करने को उत्तर प्राणायाम कहते हैं और विलोम रीति से देह के अधोभागीय अंगों (नाभि आदि में प्राण वायु स्थिर करने को अधर प्राणायाम कहते हैं।

(१७) पूरक प्राणायाम : नासिका द्वारा श्वास भीतर लेने को पूरक प्राणायाम कहते हैं। रेचक प्राणायाम से उदरव्याधि का नाश होता है और पूरक प्राणायाम से शरीर में पुष्टि होती है तथा अनेक रोग शान्त हो जाते हैं।

प्राणायाम साधना के लिए यह आवश्यक है कि साधक पंच तत्व—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश उनका ध्यान व मनन करे। जैनाचार्यों ने भृकुटी चक्र एवं आज्ञाचक्र की ओर से बंकनाल के पास होकर, पश्चिम द्वार से निकलकर, नाभि में खटका देता हुआ, हृदय कमल व कण्ठदल के ऊपर से दक्षिण रन्ध्र में घुसकर, वाम नासिका से जो श्वास निकलता है, उसे ही स्वर कहा है। इसी प्रकार वाम नासिका से घुसकर दक्षिण नासिका से स्वर की गति का वाम और दक्षिण गमनागमन होता रहता है। इसमें रहस्य इतना ही है कि भृकुटी चक्रसे नाभिचक्रमें श्वास गतिसे प्रवेश करता हुआ खर-खर ध्वनि उठाता है। उस खर-खर की ध्वनि का बोध स्वर-साधक को अभ्यास द्वारा ही होता है। आचार्य मानतुंग ने गुरु कृपा की यहाँ आवश्यकता बताई है। स्वर का विवेचन आचार्यों ने इस प्रकार से किया है।

पृथ्वी तत्व : वर्ण पीला, १२ या ८ अंगुल नासिकाग्रभाग के ठीक समक्ष बहता है, स्वाद मीठा, आकार चतुष्कोण, अवधि ५० पल अथवा २० मिनट, स्थान जंघा।

जल तत्व : वर्ण श्वेत, १६ या १२ अंगुल नासिका के निम्न भाग से बहता है, स्वाद कषायला, गोल आकार, अवधि ४० पल या १६ मिनट, पैरों में स्थित होता है।

अग्नि तत्व : वर्ण लाल, चार अंगुल, ऊँची गति, स्वाद तीक्ष्ण, त्रिकोण आकार, अवधि ३० पल या १२ मिनट, स्थान स्कन्ध।

वायु तत्व : वर्ण हरा अथवा नीला, ८ अंगुल अथवा ५ अंगुल तिरछी गति, स्वाद में खट्टा, आकार ध्वज जैसा, अवधि २० पल या आठ मिनट, नाभि में स्थान है।

आकाश तत्व : वर्ण काला अथवा नाना प्रकार का, नासिका के भीतर बहता है, स्वाद कटु, शून्याकार, अवधि १० पल या चार मिनट, मस्तक अथवा सम्पूर्ण देह में स्थित होता है।

जैन धर्म में 'णमोकार मन्त्र' स्वरविद्या एवं योगविद्या के सम्पूर्ण रहस्यों का भण्डार है। उसके पाँच पद हैं जैसे कि :

णमो अरिहंताणं के ध्यान से उदान का जय होता है व अणिमा-महिमा की सिद्धि होती है।

णमो सिद्धाणं के ध्यान से सिद्धेश्वरी एवं गरिमा सिद्धि होती है।

णमो आयरियाणं के ध्यान से ऋद्धि सिद्ध होती है।

णमो उवज्झायाणं के ध्यान से प्राप्तिलब्धि नामक ऋद्धि की सिद्धि होती है।

णमो लोए सव्वसाहूणं के ध्यान से प्रकाम्यसिद्धि प्राप्त होती है।

ये ५ पद पाँचों तत्वों के प्रतीक हैं। अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय एवं साधु इन पाँचों के ५ वर्ण बताये गये हैं जैसे कि :

अरिहंत तत्व : वर्ण श्वेत, १२ या १६ अंगुल प्रमाण (आठ गुण प्रातिहार्यादि चार मूल अतिशय और कर्मों के क्षय के कारण चार गुण), स्वाद कषायला (अज्ञानियों के लिए, और सम्यग् दृष्टिवालों के लिए स्वादिष्ट मीठा), वर्तुल आकार, जैसे जलधारा जमीन से निकल कर फैल जाती है। अतः अरिहंत जलतत्व का प्रतीक है। अरिहंत तत्व के बोध से जलतत्व का भी पूरा ज्ञान हो जाता है। जिस समय जलतत्व बह रहा हो, उस समय अरिहंत तत्व का ध्यान करने से सिद्धि सहज में प्राप्त होती है।

सिद्धतत्व : वर्ण लाल (अग्निरूप), ज्ञान, दर्शन, चारित्र और पराक्रम के कारण ४ अंगुल प्रमाण, स्वाद तीक्ष्ण (दुष्प्रेक्ष्य होने का कारण), ऊर्ध्व गति, त्रिकोण आकार (अवगाहन के तीन भाग शेष रह जाने से), अग्नितत्व का प्रतीक है।

आचार्य तत्व : आचार्य तत्व का वर्ण पीला, १२ अंगुल प्रमाण (त्रिपदी सुनकर द्वादशांगी का निर्माण हेतु), स्वाद मीठा, समचतुस्र आकार (चतुर्विध संघ के कारण) सीधी गति, इस प्रकार आचार्य तत्व पृथ्वीतत्व का प्रतीक है।

उपाध्याय तत्व : उपाध्याय तत्व का वर्ण हरा, प्रमाण ८ अंगुल, आकार ध्वजा सम, स्वाद खट्टा, (अष्ट प्रवचन माता, पंचसमिति, त्रयगुप्ति) गति तिरछी (द्वादशांगी का सर्वांगीण मंथन सिंहावलोकन हेतु) इस प्रकार यह वायु तत्व का प्रतीक है।

साधु तत्व : साधु तत्व का वर्ण काला क्योंकि उस पर कोई रंग चढ़ता ही नहीं। साधु तत्व के नाना वर्ण भी कहे गये हैं क्योंकि साधु ही ध्यान के द्वारा आचार्य पद एवं अरिहंत पद तथा सिद्ध परमात्म स्वरूप को प्राप्त करता है। इसलिए उसके नाना रंग भी हैं, कटु स्वाद (कर्मव्याधि के लिए गुणकारक), शून्याकार (साधना की प्रारम्भिक अवस्था), इस प्रकार साधु तत्व आकाश तत्व का प्रतीक है।

पांच तत्वों के अभ्यास के लिए ५ रंगों की अलग-अलग गोलियाँ बनावें। एक गोली अनेक रंगों की निर्मित करें। ध्यान, एकाग्रता एवं बुद्धिपूर्वक विचार कर अदृष्ट गोलियों में से अभीष्ट उठावें और सफलता मिले तो समझना चाहिए कि तत्व की ठीक पहचान होने लगी है। दर्पण पर नाक का श्वास छोड़कर आकार से भी तत्व का और वर्ण का बोध किया जा सकता है।

षण्मुखी मुद्रा से भी तत्व की पहचान की जा सकती है। जैसे दोनों अंगुष्ठों से दोनों कान, तर्जनी से आँखों की पलकें, मध्यमा से नासिका स्वर बन्द कर अनामिका और कनिष्ठिका से होठों को दबावें। ऐसा करने पर मुख के सभी द्वार बन्द हो जाते हैं। तत्पश्चात् मन को भृकुटी की ओर ले जावें तो झिलमिलाते बिन्दु दिखाई देंगे। उन्हीं से रंग का बोध प्राप्त करें।

जिह्वा के स्वाद अथवा रस के अनुसार भी तत्वों का बोध सम्भव है। स्वरों एवं तत्वों का ज्ञान अभ्यास सापेक्ष है और गुरुकृपा से सरलता से हो सकता है। तथा सीधी रीति से भी वर्ण का बोध हो जाता है। तत्वों की पहचान वार्तालाप करते समय वक्ता की वृत्ति से भी की जा सकती है। जैसे वार्तालाप करते समय कोई वक्ता क्रुद्ध अथवा उग्र प्रतीत हो तो उसमें अग्नि-तत्व की उपस्थिति माननी चाहिए। यदि कोई शीघ्रता से वार्तालाप करे तो उसमें जलतत्व; धैर्य से वार्तालाप करे तो पृथ्वीतत्व और अप्रासंगिक बात करे तो उसमें वायुतत्व पहचानना चाहिए। आकाश तत्व की उपस्थिति में साधक कुछ बोल नहीं पाता और गूँगे की तरह गुम हो जाता है।

तत्व की पहचान श्वास से भी की जा सकती है। अग्नितत्व के समय

श्वास वायु उष्ण बहती है, जलतत्व में शीतल, पृथ्वीतत्व में उभयमुखी, वायु-तत्व में न शीतल और न उष्ण, आकाश तत्व में वायु बहती नहीं है अपितु चींटी के रेंगने के सामान गति धारण करती है।

योगाभ्यासी को नेती, धौती, ब्रह्मदातन, गजकर्म, नौली, बस्ती, गणेश क्रिया, बागी, शंखप्रक्षालन तथा त्राटक इन दस क्रियाओं को करके रोगनिवृति व शरीर शोधन अवश्य कर लेना चाहिए। स्वामी चिदानन्द जी महाराज ने अध्यात्म अनुभव योग प्रकाश में इन क्रियाओं का पूरे विस्तार से वर्णन किया है। प्राणायाम के अभ्यास के लिए यह आवश्यक है कि वह प्राणायाम से पहले मूल बंध, जालंधर बंध, उड्डियान बंध व जिह्वा बंध इन चारों बंधों का भी अभ्यास कर लें।

मूल बंध में एड़ी से योनिस्थान को दबाकर गुदा को संकुचित करे। फिर अपानवायु को ऊपर की ओर चढ़ावे। प्राणवायु एवं अपानवायु इन दोनों की नाभि स्थान में सन्धि को मूलबंध कहते हैं। ऐसा करने से वायु सुषुम्ना में प्रवेश करती है और नाद की प्रतीति कराती है। इस क्रिया से वायु शुद्ध होती है, जठराग्नि तीव्र होती है एवं कुण्डलिनी का जागरण प्रारम्भ होता है।

जालंधर बंध में पद्मासन लगाकर कण्ठ को नीचे झुकाकर हृदय से चार अंगुल उपर ठोड़ी को यत्नपूर्वक दृढ़ता से स्थापित करे। जालंधर बंध का अर्थ यह है कि नाड़ियों के जाल को बांधकर नीचे झुके हुये कपाल छिद्र को प्राणायाम से बाँधे और कण्ठ को संकुचित कर इड़ा व पिंगला का स्तंभन करे। इससे कण्ठ के समस्त रोग दूर हो जाते हैं।

उड्डियान बंध का सीधा अर्थ यही है कि मूलबंध-जालंधर बंध से रोकी वायु सुषुम्ना नाड़ी में प्रवेश कर जाये। सुषुम्ना के जोर से ही साधक आकाश में गमन कर सकता है।

यह बंध नाभिमण्डल को पीठ की ओर खींचकर पीठ में लगा देने से सिद्ध होता है। छः मास में ये अभ्यास पूर्ण हो जाता है।

जिह्वा बंध में जालंधर बंध अर्थात् कण्ठ को झुकाकर ठोड़ी को हृदय में स्थापित करके दोनों ऊपर के दाँतों में से जिह्वा को निकालकर लगावें।

जब साधक को इन बंधों के लगने में पूर्ण सफलता प्राप्त हो जाती है तभी प्राणायाम सिद्ध होता है।

प्राणायाम सिद्धि से मुद्राओं की सिद्धि होती है जैसे कि महामुद्रा, महाबंध

खेचरी, उड्डियानबंध, मूलबंध, जालंधरबंध, विपरीत करणी, बज्रोली और शक्ति चालन। इनमें से तीन बंधों का वर्णन तो ऊपर किया जा चुका है, शेष मुद्राओं की विधि संक्षेप में निम्न प्रकार है। जैनयोगी स्वामी चिदानन्दजी महाराज ने इनके रहस्यों का उद्घाटन किया है।

महामुद्रा : वामपाद की एड़ी को योनिस्थान में लगावे, दक्षिण पाद को लम्बा फैलावें, एड़ी जमीन पर रखके, पैर के अंगूठे और अंगुलियों को डंडे की भाँति ऊँची खड़ी करें, फिर दक्षिण पाद के अंगूठें को पकड़े और तीनों बंध लगाकर पूरक करके सुषुम्ना नाड़ी में धारण करे और मूलबंध को और अधिक दृढ़ता से लगाकर (गुदा और लिंग का मध्यभाग) को पीड़न करे तभी सुषुम्ना में प्राण का प्रवेश होता है। कुण्डलिनी जाग्रत होती है। इड़ा और पिंगला दोनों ही असमर्थ हो जाती है। यह अवस्था योगी के लिए अलौकिक आनन्द देने वाली है। आनन्दघन जी भी इसी मुद्रा के परम अभ्यासी थे। उन्होंने लिखा है कि :

इड़ा पिंगला धर तज भागी, सुषुम्ना का घरवासी।
ब्रह्मरंध्र मध्वासन पूरो, बाबा अनहदनाद बजासी॥

महामुद्राओं के अभ्यास में इतना अवश्य ध्यान रखना चाहिए कि मुद्राओं का अभ्यास वाम अंग से प्रारम्भ कर फिर दक्षिण अंग से अभ्यास करना चाहिए। दोनों अंगों से बराबर अभ्यास करे और अन्त में विसर्जन कर दें। अन्तर इतना ही है कि वाम अंग से अभ्यास के समय दक्षिण चरण फैलाकर मुद्रा करना और दक्षिण अंग से अभ्यास के समय वाम चरण फैलाकर वाम हाथ से चरण का अंगूठा पकड़कर साधना करना। महामुद्रा से सभी प्रकार के भोजनों को पचन हो जाता है जिससे साधक हल्कापन अनुभव करता है।

महाबंध मुद्रा : महाबंध मुद्रा में वामचरण की एड़ी को योनिस्थान में लगाकर, फिर वामचरण की जानु के ऊपर दक्षिण चरण को धारण करे फिर हृदय में ठोड़ी लगाकर जालंधर बंध लगावें। मूलबंध लगाकर यथाशक्ति कुंभक करे, मन्द-मन्द रेचन करे इन अभ्यास से महाबंध मुद्रा सिद्ध हो जाती है।

महामुद्रा में स्थित होकर एकाग्रचित्त से योगी नासिका पुट से पूरक करे। कण्ठ की जालंधर बंध मुद्रा से वायु की ऊपर-नीची गति को रोककर कुंभक करें। पृथ्वी में लगे हुए दोनों तालुओं व दोनों हाथ समान कर योनिस्थान में लगे एड़ी वाले पैर के साथ हाथों के सहारे कुछ ऊपर उठाकर, फिर

मन्द-मन्द भूमि में ताड़न करे। इड़ा व पिंगला दोनों का उल्लंघन करके सुषुम्ना के मध्य में प्राण वायु को स्थापित कर चन्द्र, सूर्य और अग्नि में अधिष्ठत इड़ा-पिंगला से सुषुम्ना को सर्वथा मुक्त कर फिर वायु को नासिका पूर्ण कर, धीरे-धीरे रेचन करे। इस मुद्रा में पदमासन लगा रहे और मूलबंध शिथिल न होने पावे, तभी यह मुद्रा सिद्ध होती है।

विपरीत करणी मुद्रा : इस मुद्रा में योगी अपने मस्तक को पृथ्वी पर टीकाकर सिर को दोनों हाथों में लेकर मयूर आसन की तरह पैर ऊँचे करके, आकाश की ओर स्थित हो जावे। इसका उद्देश्य केवल इतना ही है कि अधोभाग में स्थित चन्द्र से झरता हुआ अमृत को ऊर्ध्वभाग में स्थित सूर्य भस्म न कर सके, क्योंकि इस विपरीत करणी मुद्रा में चन्द्रमा अधोभाग में हो जाता है और सूर्य ऊर्ध्वभाग में।

खेचरी मुद्रा : इस मुद्रा में जिह्वा को अधरों से बाहर निकालकर, दोनों हाथों के अंगुठों और तर्जनियों से पकड़कर, शनैः-शनैः बाहर को खींचकर, जिह्वा को इतना लम्बा कर देना होता है कि वह नाक पर से होकर भृकुटी को स्पर्श करने लगे। लवण लगाकर शस्त्र क्रिया के द्वारा जिह्वा की निम्न नस को छेदन करने से यह सिद्ध होती है। प्रति सप्ताह लवमात्र छेदन करता जावे और हरड़ व लवण चूर्ण लगाता जावे एवं लवण का सेवन बिल्कुल न करे, तब छः मास में यह मुद्रा सिद्ध होती है।

गुरुकृपा से ऐसी युक्ति भी है कि उसमें शस्त्रक्रिया की आवश्यकता नहीं होती। खेचरी मुद्रा में जिह्वा की नस अलग होती है, जिह्वा को तिरछी कर गले में ले जाये और नासिका के मूल छिद्र, जिसमें इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना बाहर गति करती हैं, उसे जिह्वा से ही सर्वथा निरोध कर देते हैं। अगर एक घड़ी तालू छिद्रों को बन्द कर सके तो विष के प्रभाव से योगी सर्वथा मुक्त हो जाता है और चन्द्रमण्डल से झरते हुए अमृत का पान करता है।

हरड़ का चूर्ण बनाने में भी एक ध्यान रखना आवश्यक है कि छोटी हरड़ को सोलह पहर तक आठ या दस मास की बच्छिया के मूत्र में भिगोवें। जब दो दिन में वे फूल जावें तो छाया में सुखा लें। धूप न लगे। फिर मिट्टी के सर्वथा नए बर्तन में डालकर इतना सेके कि न तो जले और न कच्ची रहे। अनुमान से लवण मिलाकर चूर्ण बना लें। सायं प्रातः दोनों समय में जिह्वा की जड़ में मालिस करें और दस-दस मिनट उपरोक्त विधि से जिह्वा को खींचें, बाहर की तरफ से ले जावें फिर तीन महीने बाद उलट कर गले की तरफ ले जावें। इस प्रकार अभ्यास करते-करते जिह्वा काग से आगे निकल

जायेगी और नौ मास में छिद्रों को रोक देगी। इसमें शस्त्रक्रिया की आवश्यकता नहीं।

ब्रज्रोली मुद्रा : गुरुगम्य है और पाठकों एवं साधकों के लिए अनावश्यक भी। प्राणायाम की एकता एवं नौली चक्र में कुंभक करके, चलित वीर्य को रोकने की सामर्थ्य योगी लोग पा सकते हैं। अलग से इस मुद्रा के अभ्यास की आवश्यकता नहीं है।

प्राणायाम की साधना के लिए प्रातः, मध्याह्न और सायंकाल की तीन-तीन घड़ियों में ८०-८० बार कुंभक, रेचक और पूरक करे, प्रतिदिन २४० बार प्राणायाम का नित्य अभ्यास करें। जघन्य प्राणायाम में पसीना आता है, मध्यम में कम्प और उत्कृष्ट प्राणायाम में ब्रह्मरंध्र विकसित होता है। विपल से कम कुंभक को जघन्य, चौरासी विपल से कुछ अधिक कुंभक को मध्यम और बंधपूर्वक १२५ विपल कुंभक हो तो उत्कृष्ट प्राणायाम होता है।

प्राणायाम जब स्थिर होता है, तब प्राण ब्रह्मरंध्र को प्राप्त होते हैं। ब्रह्मरंध्र में गया प्राण २५ पल तक स्थिर रहे तो प्रत्याहार होता है और फिर धारणा की प्राप्ति। छः घड़ी तक स्थिरता से ध्यान की उपलब्धि और बारह दिन तक स्थिरता से पूर्ण समाधि की प्राप्ति होती है।

प्राणायाम से जो पसीना बाहर आवे उसे अपनी देह में तेल की तरह मालिश कर ले उससे देह सुदृढ़ होती है। प्राणायाम से पहले तीनों बंधों का अभ्यास करना आवश्यक है अन्यथा बलवीर्य की हानि होने का भय है।

बन्ध लगाने की रीति : जिस समय पूरक करे तो मूलबन्ध लगावे अथवा पूरक के अन्त में और कुंभक के आदि में मूलबन्ध अवश्य करें। अर्धकुंभक में जालंधर बन्ध लगावे। कुंभक के अन्त में और रेचक के प्रारम्भ में उड्डियान बन्ध करें। बन्ध के बिना प्राणायाम करना मृत्यु रोग एवं विनाश को बुलाना है। मूलबन्ध और उड्डियान बन्ध, कम से कम ये दोनों अनिवार्य हैं।

प्रातः, सायं, मध्यान्ह में एवं मध्य रात्रि इन चारों कालों में प्राणायाम करें तो ३२० प्राणायाम होते हैं।

रेचक में कभी शीघ्रता न करें। पूरक में १० अक्षरों का जाप, कुंभक में १६ अक्षरों का जाप और रेचक में भी १६ अक्षरों का जाप करना अच्छा है। मन्त्रों में ॐ का ही जाप करना अच्छा है। प्राणायाम के अभ्यास होने पर साधक को चक्रबन्धन की प्रक्रिया पर चलना चाहिये।

[क्रमशः

त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र

श्री हेमचन्द्राचार्य

[पूर्वानुवृत्ति]

चतुर्थ सर्ग

तीर्थङ्कर अर के शासन काल में उत्पन्न अष्टम चक्रवर्ती सुभूम का जीवन-वृत्त अब वर्णन करता हूँ।

इसी भरत क्षेत्र में विशाल नामक नगरी में भूपाल नामक एक राजा राज्य करते थे। वे महाशक्तिशाली थे और क्षत्रिय व्रत का पालन करते थे। एक बार उनके शत्रुओं ने एकत्रित होकर सम्मिलित रूप से उनपर आक्रमण कर उन्हें पराजित कर दिया। कारण समूह की शक्ति असीम होती है। शत्रुओं द्वारा पराजित हो जाने से खिन्न होकर उन्होंने मुनि सम्भूत से दीक्षा ग्रहण कर ली। घोर तपस्या करके उन्होंने यह निदान किया कि इस तपस्या के फलस्वरूप मुझे कामभोग की सर्वोत्तम वस्तु और सैन्यनिधि प्राप्त हो। इस निदान की आलोचना न करते हुए उपवास में मृत्यु वरण कर वे अष्टम स्वर्ग महाशुक्र में देव रूप में उत्पन्न हुए।

भगवान ऋषभ के कुरू नामक एक पुत्र था। उनके हस्ती नामक एक पुत्र हुआ जिसके नाम पर हस्तिनापुर नगरी का नामकरण हुआ था। यह नगरी तीर्थङ्करों और चक्रवर्तियों का निवास रूप थी। इसी वंश के दीर्घबाहु अनन्तवीर्य तब वहाँ राज्य करते थे। उस समय में बसन्तपुर नामक नगर में अग्निक नामक एक युवक रहता था। उनके वंश में कोई भी जीवित नहीं था। एक दिन वह इस स्थान का परित्याग कर अकेले घूमते हुए एक आश्रम में पहुँचा। आश्रम के कुलपति ने उसे अपने पुत्र की तरह उस आश्रम में स्थान दिया। कठिन तपस्या कर अग्नि सदृश अपने दुःसह तेज के कारण वह पृथ्वी पर जमदग्नि नाम से विख्यात् हुआ।

वैश्वानर नामक देव जो पूर्व जन्म में श्रावक था और धन्वन्तरी नामक देव जो पूर्व जन्म में ब्राह्मण तापसों का भक्त था दोनों में विवाद छिड़ गया। उनमें पहले ने कहा, अर्हत् धर्म ही श्रेष्ठ है। दूसरे ने कहा, तापस धर्म ही श्रेष्ठ है। वैश्वानर ने कहा, तुम यदि किसी नवदीक्षित निर्ग्रन्थ की भी

परीक्षा लो तो वह उस परीक्षा में उत्तीर्ण होगा और यदि किसी प्रौढ़ तापस की भी परीक्षा लो तो वह उस परीक्षा में उत्तीर्ण नहीं हो सकेगा। जिसमें अधिक गुण होते हैं वही श्रेष्ठ होता है। दोनों एकमत होकर पहले निर्ग्रन्थ साधक की परीक्षा लेने गए।

उस समय मिथिला नगरी के राजा पद्मरथ जो कि भावमुनि थे पदविहार करते हुए वासुपूज्य स्वामी से दीक्षित होने के लिए चम्पा नगरी की ओर जा रहे थे। दोनों देव उनके निकट गए एवं उनके सम्मुख आहार पानी रखकर उन्हें आहार ग्रहण करने को कहा। यद्यपि पद्मरथ क्षुधार्थ और तृष्णार्थ थे फिर भी उसे साधु के लेने योग्य न समझकर ग्रहण नहीं किया। कारण दृढ़-संकल्पी कभी सत्य से विचलित नहीं होता। तब देवों ने राह में कंकर-कांटे बिछाकर राह को छूरे की धार की तरह कर दिया जिससे उनके कोमल पैर से चलना कठिन हो गया फिर भी पद्मरथ ने अविचलित भाव से इस प्रकार पथ अतिक्रम किया मानों वे रूई बिछाकर पथ पर चल रहे हों जबकि उनके पैर लहूलुहान हो गए थे। उनके सम्मुख नृत्य-गीत नाटकादि कर उन्हें विचलित करना चाहा किन्तु दैव अस्त्र जिस प्रकार आत्मियों पर असफल हो जाता है उसी प्रकार वे सब असफल हो गए। तब वे सिद्धपुत्र का रूप धारण कर उनके सम्मुख आए और बोले—महाभाग, आपकी उमर लम्बी है और आप अभी तरुण हैं, अतः अभी आप सांसारिक सुख भोग करें। तरुण अवस्था में योग ग्रहण की क्या आवश्यकता है? उत्साही होने पर भी ऐसा कौन है जो सन्ध्या का कार्य सुबह ही प्रारम्भ करे? जब यौवन बीत जाए और शरीर निर्बल हो जाए तब द्वितीय वार्द्धक्य की तरह तप आराधना करिएगा।

पद्मरथ बोले, यदि उमर लम्बी है तो धर्म साधना अधिक होगी। पद्मनाल जल के अनुरूप ही बढ़ती है। इन्द्रियाँ जब चंचल है उस समय की गई तपस्या ही तपस्या है। उसे ही वीर कहा जाता है जो युद्ध में तीक्ष्ण अस्त्रों के सम्मुखीन होकर अपना वीरत्व प्रदर्शित करता है।

देव उसकी दृढ़ता देखकर 'बहुत ठीक, बहुत ठीक' कहकर जमदग्नि की परीक्षा लेने गए। उस समय जमदग्नि एक वटवृक्ष के नीचे ध्यानमग्न थे। उनकी वृहद् जटाएँ वृक्ष की तरह ही विस्तृत होकर भूमि स्पर्श कर रही थी। चींटें उनके पैरों के पास से चल रहे थे। देव उनकी जंगल-सी दाढ़ी में एक छोटा घोंसला बनाकर उसमें पक्षी रूप धारण कर बैठ गए। नर पक्षी बोला,

प्रिए, मैं हिमालय जा रहा हूँ। मादा पक्षी तब शंकित होकर बोली, देखो, वहाँ अन्य के प्रेम में पड़कर तुम यदि नहीं लौटे तो ? नर पक्षी बोला, प्रिए, यदि मैं नहीं लौटूं तो मुझे गोहत्या का पाप लगे। मादा पक्षी बोली, ऊँ हूँ, इस सामान्य शपथ से कुछ नहीं होगा। तुम यदि बोलो कि तुम्हें इस तपस्वी का पाप लगेगा तब मैं जाने दूँगी। तुम्हारी यात्रा शुभ हो।

उनकी बात सुनकर जमदग्नि क्रुद्ध हो उठे—उन्होंने दोनों पक्षियों को मुट्ठी में पकड़ कर कहा सूर्य के मध्य अन्धकार-सा मेरे जैसे कठोर तपस्वी में ऐसा क्या पाप देखा कि मुझे गोहत्या से भी बढ़कर पापी मान रहे हो ?

तब नर पक्षी बोला, ऋषिवर, आप क्रुद्ध न हों। आपकी समस्त तपस्या ही व्यर्थ है। क्या आप यह श्रुतिवाक्य नहीं जानते, अपुत्रक की गति नहीं होती ? जमदग्नि विचार में पड़ गए—सोचने लगे, ठीक ही तो है। बिना पत्नी और बिना पुत्र के मेरी तो समस्त तपस्या ही जल में घुल गयी है।

उन्हें चिन्तित देखकर धन्वन्तरी सोचने लगे कि वे तापसों द्वारा भ्रमित हो गए हैं। ऐसा सोचकर वे अर्हत् भक्त हो गए। प्रमाण द्वारा भला किसे बोध नहीं होता ? तदुपरान्त वे दोनों देव अदृश्य हो गए और जमदग्नि नेमिक-कोष्ठ नगर में गए। वहाँ राजा जितशत्रु के अनेक कन्याएँ थीं। उनमें से किसी को गौरी की तरह प्राप्त करने वे राजसभा में गए। उन्हें देखकर राजा उठ खड़े हुए और वन्दना कर करबद्ध होकर बोले, महाभाग, कहिए आपका शुभागमन यहाँ क्यों हुआ है ? मैं आपके लिए क्या कर सकता हूँ ?

जमदग्नि बोले, राजन्, मैं आपसे आपकी एक कन्या को माँगने आया हूँ। राजा बोले, मेरे सौ कन्याएँ हैं। उनमें जो आपको वरण करना चाहे उसे आप ग्रहण करें। तब जमदग्नि अन्तःपुर गए और राजकन्याओं को सम्बोधित कर बोले, तुममें से कोई मुझे वरन करो। ऐसा सुनकर वे थूः थूः करने लगी और बोली, पके हुए केश, जटाधारी शीर्ण और भिक्षाजीवि तुम्हें ऐसा कहने में लज्जा नहीं आती ?

जमदग्नि ने तब क्रुद्ध होकर धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाते समय धनुष को जैसे झुकाया जाता है उसी प्रकार उन्हें कुबड़ी बना दिया। उस समय राजा की सबसे छोटी कन्या प्रांगण में रखी बालू के ढेर पर खेल रही थी। उसे देखकर ऋषि ने, रेणुका, कहकर पुकारा और बिजोरा नींबू दिखाकर कहा; यह लोगी ? उसने हाथ बढ़ाया, (विवाह में जैसे पाणिग्रहण किया जाता है) ऋषि ने उसे ग्रहण कर दरिद्र जैसे अर्थ को छाती से चिपका लेता है उसी प्रकार उसे

छाती से चिपका लिया। तब राजा ने गौ आदि देकर विधिवत् रेणुका को ऋषि को दान कर दिया। सन्तुष्ट होकर ऋषि ने अपनी पत्नी की निनानवे बहिनों को तपोबल से पुनः स्वस्थ कर दिया। मूर्ख ही ऐसी तपस्या करते हैं। तदुपरान्त ऋषि उसे आश्रम में ले गए और यत्नपूर्वक उसका लालन-पालन करने लगे। वह शान्त स्वभाव व सरल थी। उसके नेत्र हरिणी के नेत्रों की तरह भीरु थे। जब तक उसने मदन के सुन्दर निकुंज-सा यौवन प्राप्त नहीं किया तब तक जमदग्नि अंगुली के पोरों पर दिन, महीने, वर्ष गिनते रहे। जब रेणुका यौवन को प्राप्त हुई तब अग्नि को साक्षी बनाकर भूतेश (शिव) ने जिस प्रकार पार्वती से विवाह किया था उसी प्रकार विधिवत् रेणुका से विवाह कर लिया।

ऋतुकाल में जमदग्नि रेणुका से बोले, मैं तुम्हारे लिए ऐसा चरु प्रस्तुत करूँगा जिससे तुम्हारा पुत्र ब्राह्मण श्रेष्ठ होगा। यह सुनकर रेणुका बोली, मेरी बहिन हस्तिनापुर के राजा अनन्तवीर्य की रानी है उसके लिए भी ऐसा ही चरु प्रस्तुत करें ताकि उसका पुत्र क्षत्रियश्रेष्ठ हो। पुत्र की कामना में जमदग्नि ने तब दोनों चरु प्रस्तुत किए और रेणुका को वे चरु दिए। रेणुका तब सोचने लगी, मैं तो वन की हिरणी बनी हूँ किन्तु मेरा पुत्र ऐसा नहीं बने ऐसा सोचकर उसने क्षत्रिय चरु स्वयं रख लिया और ब्राह्मण चरु अपनी बहिन को भेज दिया। दोनों गर्भ से पुत्रों ने जन्म ग्रहण किया। रेणुका के राम और उसकी बहिन के कृतवीर्य जन्मा।

एक दिन आकाश से एक विद्याधर जा रहा था। वह सहसा अतिसार रोग से आक्रान्त होने के कारण विद्या भूल गया अतः वहाँ उतरा। राम ने भाई की तरह औषधि आदि देकर उसकी सेवा की, उसे स्वस्थ किया। विद्याधर इससे प्रसन्न होकर राम को एक परशु विद्या दी। इक्षु क्षेत्र में जाकर राम ने उस परशु विद्या को अधिगत किया और तभी से वह परशुराम रूप से परिचित होने लगा।

एक दिन रेणुका स्वामी से विदा लेकर अपनी बहिन को देखने हस्तिनापुर गयी। जहाँ प्रेम होता है वहाँ दूरी नहीं होती। हरिण-नयनी रेणुका को देखकर अनन्तवीर्य कामान्ध हो उठा और उससे कामक्रीड़ा की, यह भी नहीं सोचा यह मेरी पत्नी की बहिन है। सचमुच कामान्ध क्या नहीं कर बैठता। पुरन्दर ने अहिल्या के सहवास से जिस प्रकार आनन्द प्राप्त किया था, अनन्तवीर्य ने भी ऋषिपत्नी के सहवास से उसी प्रकार आनन्द प्राप्त किया।

ऊतथ्य पत्नी ममता ने जैसे बृहस्पति के औरस से एक पुत्र प्राप्त किया, उसी प्रकार रेणुका ने अनन्तवीर्य के औरस से एक पुत्र प्राप्त किया। जमदग्नि ने उस पुत्र सहित रेणुका को ग्रहण किया कारण स्त्रैण व्यक्ति पत्नी का दोष नहीं देख पाता। किन्तु परशुराम क्रुद्ध होकर द्राक्षालता में जिस प्रकार असमय में फल लगने पर उसे काटकर फेंक दिया जाता है उसी प्रकार रेणुका और उसके पुत्र को काट कर फेंक दिया। रेणुका के पति ने जब यह बात अनन्तवीर्य से कही तब हवा से जैसे अग्नि उद्दीप्त हो जाती है वैसे ही वे क्रोध से उद्दीप्त हो गए। अनन्तवीर्य जिसका पराक्रम असहनीय था जमदग्नि के आश्रम में गये और मतवाले हाथी की तरह उस आश्रम को विनष्ट कर लौट गए। आश्रम-वासी भयभीत होकर चारों ओर भाग गए और अनन्तवीर्य आश्रम की गौएँ आदि पशु लेकर सिंह की तरह धीरे-धीरे राजधानी की ओर अग्रसर होने लगे। त्रस्त आश्रमवासियों से जब परशुराम को यह संवाद मिला और उनकी दुर्दशा जब वह अपनी आँखों से देखा तब क्रुद्ध होकर यम की भाँति दौड़ा और परशु विद्या द्वारा सैन्य सहित राजा अनन्तवीर्य को काट-काटकर टुकड़े-टुकड़े कर डाला।

कृतवीर्य शक्तिशाली होने पर भी उस समय बालक था। अतः मन्त्रीगण उसे सिंहासन पर बैठाकर राज्य शासन करने लगे। कृतवीर्य भी क्रमशः बड़ा होकर अपनी पत्नी तारा के साथ समय व्यतीत करने लगे।

राजा भूपाल का जीव अपनी आयुष्य पूर्ण कर महाशुक्र विमान से च्युत होकर तारा के गर्भ में प्रविष्ट हुआ। तारा ने चौदह महास्वप्न देखे। अपनी माँ से पिता की मृत्यु का रहस्य अवगत कर कृतवीर्य जमदग्नि के आश्रम में गया और सर्प की तरह उसकी हत्या कर दी। परशुराम पिता की हत्या से क्रुद्ध होकर हस्तिनापुर दौड़ा और कृतवीर्य की हत्या कर डाली। भला यम से कौन रक्षा पा सकता है। तब परशुराम ने हस्तिनापुर राज्य पर स्वयं को प्रतिष्ठित किया। कारण राजशक्ति पराक्रम के अधीन है, उत्तराधिकार या उत्तराधिकार के अभाव का सापेक्ष नहीं है। तारा के गर्भवती होने पर भी हरिणी जैसे व्याघ्र संकुल अरण्य का परित्याग कर अन्य अरण्य में चली जाती है उसी प्रकार परशुराम द्वारा विजित उस नगरी का परित्याग कर तापसों के एक आश्रम में चली गयी। दयालु कुलपति धरोहर की भाँति उसे भूमिगृह में रखा और निष्ठुर परशुराम के हाथों से उसकी रक्षा की। उसी भूमिगृह में चौदह महास्वप्नों द्वारा जो कुछ सूचित हुआ उसी के अनुरूप एक

पुत्र का जन्म हुआ। भूमिगृह में जन्म लेने के कारण उसका नाम रखा गया सुभूम।

परशुराम की कुठार क्षत्रिय देखते ही मानों मूर्तिमान क्रोधाग्नि हो इस प्रकार जल उठती। क्षत्रियों को निःशेष करते-करते एक बार वे उसी आश्रम में गये। धुआँ जैसे अग्नि की सूचना देता है उसी प्रकार उनका कुठार जल उठने से यह सूचित हुआ कि यहाँ क्षत्रिय अवस्थित है। तापसों से तब उन्होंने पूछा, यहाँ कौन क्षत्रिय अवस्थित है, बताओं? उन्होंने प्रत्युत्तर दिया हम ही क्षत्रिय हैं जो अब तापस हो गए हैं। यह सुनकर परशुराम लौट गए। दावाग्नि जैसे पहाड़ पर उगे लता-पत्रों को जलाकर राख कर देती है उसी प्रकार परशुराम ने सात-सात बार पृथ्वी को निःक्षत्रिय कर दिया और उनके दाँत जिन्हें खाकर यम परितृप्त हुआ है ऐसे यम के खाद्य रूप एक वृहद् थाल में सजाकर रखा।

एक दिन परशुराम ने एक नैमित्तिक से पूछा, मेरी मृत्यु किसके हाथ से होगी? कारण जो युद्ध विग्रह में लिप्त रहते हैं वे शत्रु के हाथ से मृत्यु भय से भयभीत रहते हैं। प्रत्युत्तर में नैमित्तिक ने कहा, जिसके प्रताप से यह दाँत क्षीर में परिणत हो जाएगा और जो इस सिंहासन पर बैठ कर उस क्षीर का पान करेगा उसी के हाथों से आपकी मृत्यु होगी। तब परशुराम ने एक दानशाला निर्मित कर उसमें उस सिंहासन को रख दिया और उसके सामने एक उच्चासन पर वह थाल सजाकर रखा।

प्रांगण में जैसे वृक्ष वर्द्धित होता है उसी प्रकार छब्बीस धनुक दीर्घ स्वर्ण-वर्ण सुभूम क्रमशः यौवन को प्राप्त हुआ।

वैताढ्य पर्वत निवासी विद्याधर मेघनाद ने एक दिन नैमित्तिकों से पूछा, मेरी कन्या पद्मश्री का पति कौन होगा? प्रत्युत्तर में उन्होंने सुभूम का नाम बताया। मेघनाद ने तब उसी आश्रम में आकर सुभूम के साथ पद्मश्री का विवाह कर दिया और स्वयं उसकी सहायता के लिए वहाँ रह गया। जो समग्र पृथ्वी का अधीश्वर होगा ऐसे सुभूम ने कूपवासी मण्डुक की तरह एक दिन अपनी माँ से पूछा, माँ, क्या पृथ्वी इतनी ही है जिसपर हम रहते हैं? माँ ने कहा, पुत्र पृथ्वी बहुत बड़ी है। यह आश्रम तो पृथ्वी का एक कण मात्र है। इसी पृथ्वी पर हस्तिनापुर नामक एक नगर है। वहाँ तुम्हारा पिता कृतवीर्य राज्य करते थे। परशुराम ने तुम्हारे पिता की हत्या कर उसी राज्य पर अपना अधिकार कर लिया है। उसीने इस पृथ्वी को बार-बार निःक्षत्रिय

कर दिया है। उसी के भय से मैं यहाँ रहती हूँ। यह सुनकर क्रुद्ध हुए प्रज्वलित भौम की तरह सुभूम हस्तिनापुर नगर गए। क्षत्रिय तेज सहना कठिन होता है। वहाँ वह पहले दानशाला में गया और सिंह की भाँति वहाँ रखे सिंहासन पर बैठकर उन दाँतों को जो कि उनके प्रताप से खीर में परिणत हो गयी थी पान किया। तब ब्राह्मणों ने जो कि उस थाल की रक्षा कर रहे थे, सुभूम पर आक्रमण किया। मेघनाद जो कि सुभूम के साथ ही आए थे, उन्होंने बाघ जैसे हरिणी की हत्या करता है उसी प्रकार उनकी हत्या कर डाली। रक्षकगण मारे गये सुनकर क्रुद्ध परशुराम मानों यमपाश से आकृष्ट हुए हों उसी प्रकार दौड़े आए और सुभूम पर परशु निक्षेप किया। किन्तु वह परशु जल में गिर जाने से स्फुलिंग जैसे बुझ जाता है उसी प्रकार सुभूम के समीप जाते ही बुझ गया। अस्त्राभाव में सुभूम ने उसी थाल को उठाया जो कि देखते-देखते चक्र में परिणत हो गया। पुण्योदय से क्या सम्भव नहीं है! तब अष्टम चक्रवर्ती सुभूम ने उसी चक्र से परशुराम का मस्तक काट डाला।

परशुराम ने जिस प्रकार सात बार पृथ्वी को निःक्षत्रिय कर दिया था सुभूम ने उसी प्रकार पृथ्वी को इक्कीस बार ब्राह्मणहीन कर डाला। रक्त की नदी प्रवाहित कर और रथी, गज, अश्व और पदातिकों की हत्या कर उन्होंने पहले पूर्व दिशा को जीत लिया। मृत सैनिकों की देह द्वारा अलंकृत पथ से होकर यम के अनुरूप उन्होंने दक्षिण दिशा को जीत लिया। समुद्र तीर को हड्डियों से सीपमय कर उन्होंने पश्चिम दिशा को भी जीत लिया। मंदार पर्वत की तरह शक्तिशाली उन्होंने सहज ही वैताढ्य पर्वत के गुहा द्वार को खोलकर उत्तर भारत में प्रवेश किया और हस्ती जैसे इक्षु क्षेत्र को दलित मथित कर डालता है उसी भाँति म्लेच्छों के रक्त से पृथ्वी रंजित कर उन्हें दलित-मथित कर डाला। चक्रवर्ती सुभूम ने मेघनाद को वैताढ्य पर्वत की उभय श्रेणियों का आधिपत्य दिया।

साठ हजार वर्षों की आयुष्य वाले सुभूम ने चारों ओर हत्या और रक्त-पात कर छः खण्ड पृथ्वी को जीत लिया। महारम्भ और रौद्र ध्यान के लिए सुभूम यथासमय मृत्यु को प्राप्त हुआ और सप्तम नरक में गया। पाँच हजार वर्ष राजकुमार रूप में, पाँच हजार वर्ष राजा रूप में, पाँच सौ वर्ष दिग्विजय में और पाँच सौ वर्ष कम पचास हजार वर्ष चक्रवर्ती के रूप में उन्होंने शासन किया।

चतुर्थ सर्ग समाप्त

पंचम सर्ग

भगवान अरनाथ के समय सप्तम दत्त वासुदेव, नन्दन बलदेव और प्रह्लाद प्रतिवासुदेव हुए। उनका परिचय यहाँ विवृत करता हूँ।

जम्बूद्वीप के पूर्व विदेह में पृथ्वी की अलंकार तुल्या सुसीमा नामक एक नगरी थी। वहाँ वसुन्धर नामक एक राजा राज्य करते थे। दीर्घ काल तक राज्य कर उन्होंने मुनि सुधर्म से दीक्षा ग्रहण कर ली और मृत्यु के बाद ब्रह्म देवलोक में उत्पन्न हुए।

जम्बूद्वीप के दक्षिण भरतार्द्ध में शीलपुर नामक नगरी में मन्दरधीर नामक एक राजा थे। उनका ललितमित्र नामक एक पुत्र था। वह शक्तिशाली दीर्घबाहु, गुण रूप रत्नों का आकर और मित्ररूप कमलों के लिए सूर्यरूप था। राजा के मन्त्री खल ने उसे 'दुर्विनीत' कहकर राजा को उससे अप्रसन्न कर दिया और उसके अनुज को युवराज पद पर अभिषिक्त किया। इस अपमान से संसार के प्रति विरक्त होकर ललितमित्र ने मुनि घोषसेन से दीक्षा ग्रहण कर ली। उग्र तपस्या कर उन्होंने यह निदान कर लिया कि मैंने तपस्या कर यदि कोई पुण्य संचय किया है तो अगले जन्म में खल की हत्या कर सकूँ। इस निदान की आलोचना किए बिना ही वह मृत्यु को प्राप्त हुआ और सौधर्म देवलोक में शक्तिशाली देव रूप में उत्पन्न हुआ।

दीर्घकाल तक भव अटवी पर्यटन करते हुए मन्त्री खल का जीव जम्बूद्वीप के वैताढ्य पर्वत की उत्तर श्रेणी के तिलकपुर नगर में विद्याधरों के अधिपति प्रतिवासुदेव के रूप में जन्म ग्रहण किया।

जम्बूद्वीप के दक्षिण भरतार्द्ध में गंगा की मित्र रूपा वाराणसी नामक एक नगरी थी। इक्ष्वाकुवंशीय अग्निसिंह वहाँ के राजा थे। वे सिंह के समान बलशाली और अग्नि के समान तेजस्वी थे। दृढ़ता और उद्यमरूप पंखयुक्त उनका यशःरूपी हंस पृथ्वी परिक्रमा से कभी विरत नहीं होता। रणक्षेत्र में वे जिस सहजता से धनुष का चिल्ला झुका देते थे उसे देखकर विपक्षी राजागण उनकी आज्ञा शिरोधार्य कर सहज ही विनत हो जाते थे। आलान स्तम्भ से बंधी हस्तिनी की तरह उनके गुणों के लिए उनके बाहुरूप स्तम्भ से आबद्ध होकर लक्ष्मी निश्चला हो गयी थी।

जयन्ती और शेषवती नामक उनकी दो पत्नीयाँ थीं जो सौन्दर्य में पृथ्वी

की अन्य स्त्रियों का अतिक्रम कर गयी थी। राजा वसुन्धर का जीव पंचम देवलोक से च्युत होकर अग्रमहिषी जयन्ती के गर्भ में अवतरित हुआ। बलराम के जन्मसूचक उन्होंने चार महास्वप्न देखे और यथा समय एक पुत्ररत्न को जन्म दिया। पृथ्वी को आनन्दित करने के कारण उसका नाम रखा गया नन्दन।

ललितमित्र का जीव सौधर्म देवलोक से च्युत होकर शेषवती के गर्भ में प्रविष्ट हुआ। उसने वसुदेव का जन्मसूचक सात महास्वप्न देखे। पुत्र का जन्म होने पर उसका नाम रखा गया दत्त। छब्बीस धनुष दीर्घ और क्षीरोद और कालोद समुद्र की तरह गौर और कृष्णवर्णीय वे क्रमशः बड़े होकर यौवन को प्राप्त हुए। ताल और गरुड़ध्वज वे नील और पीत वस्त्र पहने उम्र में छोटे-बड़े होने पर भी कार्यतः समवयस्क हों ऐसा ही लगते थे।

प्रतिवासुदेव अर्द्धचक्री प्रह्लाद को एक दिन खबर मिली कि ऐरावत-सा एक सुन्दर हस्ती महाराज अश्विसिंह के पास है। उन्होंने उस हस्ती को प्राप्त करने के लिए आदमी भेजा। किन्तु नन्दन और दत्त ने उसे देने से अस्वीकार कर दिया। इससे अपमानित होकर वह सिंह की तरह क्रुद्ध हो उठा। कुपित वन्य हस्ती की तरह वासुदेव और प्रतिवासुदेव दोनों ने ससैन्य एक-दूसरे पर आक्रमण कर दिया। प्रह्लाद के आक्रमण से अपनी सेना को हारते देख कर रथ पर चढ़कर वासुदेव और बलदेव युद्ध में अग्रसर हुए। दत्त ने शत्रु सैन्य को विनष्ट करने के लिए पंचजन्य शंख बजाया और सारंग धनुष पर टंकार दी मानों विजयतुर्य बजा रहे हैं। प्रह्लाद ने भी अपने धनुष की टंकार के निनाद से आकाश को निनादित कर क्रुद्ध दण्डपाणि (यम) की तरह उनकी ओर दौड़ा। वासुदेव और प्रतिवासुदेव क्रुद्ध होकर परस्पर बाण वर्षा करने लगे। विजय लाभ के उद्देश्य से दोनों परस्पर एक-दूसरे के बाण काट देते थे। विनाश में निपुण दोनों ने परस्पर एक दूसरे की गदा, दण्ड, मुदगर और अन्य शस्त्रों को विनष्ट कर डाला। प्रलय के समय सूर्य जैसे उल्का उद्गीर्ण करता है उसी प्रकार सहस्र शिखायुक्त अग्नि उद्गीर्णकारी चक्र प्रह्लाद ने अपने मस्तक पर घुमाकर वासुदेव पर निक्षेप किया। वासुदेव ने उसी चक्र को, जो नाकाम होकर उनके निकट स्थिर खड़ा था, ग्रहण किया और माथे पर घुमाकर प्रह्लाद पर निक्षेप किया। चक्र ने प्रह्लाद का गला काट डाला। फिर वासुदेव दिग्विजय को निकले और भरतार्द्ध को जय कर लिया। तदुपरान्त कोटि-शिला उठाकर अर्द्धचक्री के रूप में अभिषिक्त हुए।

दत्त दो सौ वर्ष युवराज रूप में, पचास वर्ष मांडलिक राजा के रूप में, पचास वर्ष दिग्विजय में और अवशिष्ट काल चक्री रूप में सुख भोग करते हुए व्यतीत किए। छप्पन हजार वर्ष की परमायु शेष होने पर वे अपने क्रूर कर्मों के कारण पंचम नरक में गए।

दत्त की मृत्यु के पश्चात् नन्दन जिनका आयुष्य पैंषठ हजार वर्ष था, किसी प्रकार जीवन को धारण किए रहे। भ्राता की मृत्यु और लोक भावना से विरक्त होकर संसार की अलंकार रूपा दीक्षा ग्रहण कर ली। अतिचार रहित व्रत पालन कर वे मोक्ष गए।

पंचम सर्ग समाप्त

[क्रमशः

संकलन

।। क्रूरता है छोटे बच्चों को स्कूल भेजना ।।

विगत कुछ वर्षों से बच्चों को जल्दी ही स्कूल भेजने की प्रवृत्ति तेजी से बढ़ रही है। प्रारम्भ में बच्चों को पांच वर्ष की आयु से पूर्व स्कूल में नहीं लिया जाता था, परन्तु अब ढाई तीन साल के बच्चों को भी स्कूल भेजने की प्रवृत्ति को बढ़ाने में तथाकथित अंग्रेजी माध्यम स्कूलों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। ये स्कूलें मोटी फीसें वसूल करने के लिए बच्चों को छोटी आयु में ही स्कूल आने-जाने तथा पढ़ने का बोझ डाल देती है।

छोटी आयु के बच्चों को स्कूल भेजने की प्रवृत्ति के पीछे उसके माता-पिता का भी योगदान कम नहीं होता। एक तो अपने बच्चों को प्रतियोगी स्थिति में पिछड़ने न देने की लालसा तथा उसमें भी महत्वपूर्ण बच्चों की जिम्मेदारी से भागने की प्रवृत्ति ने कम आयु के बच्चों को स्कूल भेजने की प्रवृत्ति को बढ़ावा दिया है। माता-पिता भी प्रारंभ में ही बच्चों को स्कूल भेजकर अपनी जिम्मेवारी से मुक्ति पाना चाहते हैं।

वास्तव में ढ़ाई-तीन वर्ष की आयु में बच्चे को मां के प्यार तथा पर्याप्त लालन-पालन की आवश्यकता होती है। यह आयु उसके मानसिक तथा शारीरिक विकास की होती है। इस आयु में बच्चे पर किसी भी प्रकार का बोझ उसके स्वाभाविक विकास को रोक सकता है। कम उम्र में स्कूल भेजने से बच्चे पर मानसिक एवं शारीरिक बोझ पड़ता है जिससे उसके विकास की गति प्रभावित होती हैं। परन्तु माता-पिता इस बात को ध्यान में नहीं रखते। वे बच्चे को स्कूल भेजकर गौरव का अनुभव करते हैं। स्कूल के प्रबन्धकों को भी इससे कोई खास लेना-देना नहीं होता कि बच्चे का मानसिक व शारीरिक विकास हो रहा है अथवा नहीं। उन्हें तो मोटी फीसों से मतलब होता है जो उन्हें आसानी से मिल जाती है तथा लम्बे समय तक मिलती रहती है।

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान परिषद ने भी बच्चों को समय से पूर्व स्कूल भेजने की प्रवृत्ति पर चिन्ता व्यक्त की है। यह माना गया है कि छोटी आयु

में बच्चों को स्कूल भेजना एक प्रकार से क्रूरता है। परिषद ने सुझाव दिया कि तीन साल से कम उम्र के बच्चों को कदापि स्कूल नहीं भेजा जाना चाहिए। यह भी सुझाव दिया गया है कि नर्सरी कक्षा में प्रवेश के लिए बच्चे तथा उसके माता-पिता के इन्टरव्यू की पद्धति को समाप्त किया जाना चाहिए। इस कक्षा में प्रवेश हेतु लिए जाने वाले टेस्ट की प्रवृत्ति को भी समाप्त किया जाना चाहिए तथा तीन से पांच वर्ष की आयु तक बच्चे को लिखने तथा सवाल हल करने के लिए नहीं दिये जाने चाहिए। इस अवधि में बच्चे के स्वाभाविक विकास के साथ-साथ उसे मौखिक जानकारियां ही दी जानी चाहिए।

…बच्चे के स्वाभाविक विकास के लिए यह आवश्यक है कि उस पर छोटी आयु में स्कूल तथा किताबों का बोझ न डालें। यह कार्य अभिभावकों तथा सरकार के सहयोग से ही संभव है।

—डा० अजय जोशी

अणुव्रत, १६ अप्रैल, १९९१

जैन पत्र-पत्रिकाएँ—कहाँ/क्या

तीर्थंकर : मार्च-अप्रैल १९९१

सम्पादकीय के अतिरिक्त इस अंक में है अगवानी : एक नयी आबोहवा की : करें क्यों ? करे कौन ? करे कैसे ? इस पर प्राप्त प्रतिक्रिया : 'किन्तु मामला तनिक पेचीदा है' (डा० प्रद्युम्न कुमार जैन), 'और मैं मंच पर बैठी सिसकियाँ भरती रही' (डा० स्नेह जैन), 'सुधार होना है घर-आँगन से' (लक्ष्मी चन्द जैन), 'जागरण अभियान में 'जैन' के साथ 'जन' भी' (डा० विमल प्रकाश जैन), 'प्रतिष्ठा धन को नहीं, जन को मिले' (यशपाल जैन), 'मूल मुद्दा है नैतिक गिरावट' (के. से. सोगानी), 'वस्तुनिष्ठ मूल्यांकन खतरनाक होगा' (मुनि नन्दीघोष विजय), 'सामाजिक-शुद्धि के लिए चाहिए प्रामाणिक आचरण' (डा. राजेन्द्र कुमार बंसल), 'परिवर्तन हुआ है ; शिथिलाचार को संरक्षण न दें' (डा. जयकुमार जलज), 'घाव इतना गहरा हो गया है कि' (गणेश ललवानी), 'पल्लाझाड़ महोत्सवों से कुछ नहीं होगा' (जमनालाल जैन), 'घर में तो हम शाकाहारी हैं' (कनकमल मुनोत), 'मध्य-वित्त जैनों की सामाजिक-आर्थिक समस्याओं पर ध्यान दें' (सुरेन्द्रकुमार जैन), 'साधु संख्या कम हो : गुणवत्ता बढ़ें / अधपकी दीक्षाएँ और 'अनड्यू' पदोन्नतियाँ रुकें' (डा. अनिलकुमार जैन), 'सर्वसम्मत आचार संहिता बनायें' (पं. जगमोहनलाल शास्त्री), 'अन्यथा श्रावक की अस्मिता ही खत्म हो जाएगी' (निर्मल जैन), 'किसी भी कदम से पहले जरूरी होगी स्वस्थ जागरूकता' (सुरेन्द्र बोथरा), 'संस्थाओं के प्रबन्धन में कसावट लायें' (सुरेन्द्र जैन), 'चाहिये : प्रस्ताव नहीं, संघर्ष' (राजेन्द्रमल कुम्मर), 'हम विचार तो दे सकते हैं, किन्तु क्रियान्वयन' (बाबूलाल पाटोदी), 'समयसारकी जगह रत्न-करण्ड श्रावकाचार का मौसम' (डा. दरबारीलाल कोठिया), 'फिर भी अच्छे तैराक मिल सकते हैं' (प्रो. लक्ष्मीचन्द जैन), 'मौन जीवनचर्या अनुकरणीय बन सकती' (पं. नाथूलाल जैन शास्त्री), 'अजनबी बादियाँ, कोई मंजिल न घर' (डा. नेमीचन्द जैन), 'अपने-अपने खेमे में बने रहें' (नथमल लूणिया), 'न जाने कितने ऊटपटाँग अवसर निकाल लेते हैं' (के. सी. सेठिया), 'मेरे पास भी मौजूद है प्रमाण' (डा. सुभाष कोठारी), 'गाँव खाली हो गये हैं' (घनसुख छाजेड़), 'जागरूक बनें श्रावक-श्राविका' (पं. रतनलाल कटारिया), 'अनेकान्त को मैदान में उतारना होगा' (डा. अरविन्द जैन), 'गरीब खेतिहर जैन भी हमारे भाई हैं' (प्रेमचन्द जैन) व अन्यान्य ।

LODHA MOTORS

A House of Telco Genuine Spare Parts and
Govt. Order Suppliers.
Also Authorised Dealers of Pace-setter and
Nicco Batteries in Nagaland State.

CIRCULAR ROAD, DIMAPUR
NAGALAND

Phone : 3039, 3174

The Bikaner Woollen Mills

Manufacturer and Exporter of Superior Quality
Woollen Yarn, Carpet Yarn and Superior
Quality Handknotted Carpets

Office and Sales Office :

BIKANER WOOLLEN MILLS

Post Box No. 24
Bikaner, Rajasthan
Phones : Off. 3204
Res. 3356

Main Office :

4 Meer Bohar Ghat Street
Calcutta-700007
Phone : 38-5960

Branch Office :

Srinath Katra : Bhadhoi
Phone : 5378
5578, 5778

WB/NC-253
Vol. XV No. 2 TITTHAYARA June 1991
Registered with the Registrar of Newspapers for India
under No. R. N. 24582/73